

राजस्थान उच्च न्यायालय

जयपुर बेंच

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या. 793/2005

1. राजेश पुत्र कल्याण प्रसाद
2. कला @ रामगिलास पुत्र कल्याण प्रसाद
3. चैत्रु @ चतुर्भुज पुत्र कल्याण प्रसाद
4. पप्पू @ चंद्र प्रकाश पुत्र शर्वन सभी निवासी बिल खान, सपोटरा, जिला करौली।

-----अभियुक्त-याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्थान राज्य

-----प्रतिवादी

संबंधित

एस.बी. आपराधिक पुनरीक्षण याचिका सं. 926/2005

राजस्थान राज्य, लोक अभियोजक के माध्यम से, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर

-----याचिकाकर्ता

बनाम

1. शिव सिंह पुत्र हरसिंह गुर्जर, निवासी टुलेका नगला, थाना रूपबास, जिला भरतपुर
2. सोनदे @ सोरण सिंह पुत्र हरि चंद मल्लाह, निवासी देवदासपुरा, थाना राजखेरा, जिला धौलपुर
3. कलैया @ रामखिलाड़ी पुत्र चंद्रभान मल्लाह, उम्र 29 वर्ष, निवासी देवदासपुरा, थाना राजखेरा, जिला धौलपुर

-----अभियुक्त/प्रतिवादी

---

|                        |   |                                                                                                                                       |   |                              |
|------------------------|---|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---|------------------------------|
| याचिकाकर्ता(ओं) के लिए | : | श्री वी.आर. बाजवा, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री<br>अमर कुमार और<br>श्री सविता नाथावत की सहायता से<br>श्री रजनीश गुप्ता<br>श्री फतेह चंद मीणा | } | पुनरीक्षण<br>सं.<br>793/2005 |
| याचिका                 |   | श्री प्रहलाद शर्मा<br>श्री सुशील पुजारी<br>श्री अतुल शर्मा - पीपी, पुनरीक्षण याचिका सं.<br>926/2005 में                               |   |                              |
| प्रतिवादी(ओं) के लिए   | : | श्री बृज मोहन शर्मा<br>श्री अतुल शर्मा - पीपी                                                                                         |   |                              |

---

**माननीय श्री. जस्टिस अनूप कुमार धाढ**  
**आदेश**

|                   |            |
|-------------------|------------|
| आरक्षित किया गया  | 22/05/2024 |
| उच्चारित किया गया | 31/05/2024 |

रिपोर्टेबल

प्रस्तुति की सुविधा के लिए, यह आदेश निम्नलिखित भागों में विभाजित है:

**सूची**

- |                                              |   |
|----------------------------------------------|---|
| (1) तथ्यगत स्थिति.....                       | 3 |
| (2) याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ..... | 4 |
| (3) लोक अभियोजक की ओर से प्रस्तुतिया.....    | 8 |

- (4) अपराधिक/प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतियाँ, अपराधिक पुनरीक्षण याचिका सं. 926/2005 में.....9
- (5) विश्लेषण, चर्चाएँ एवं कारण.....10
- (अ) सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की स्थिति, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 228 के संदर्भ में.....16
- (ब) लोक अभियोजक की भूमिका एवं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 225 और 226 के प्रावधान.....25
- (6) निष्कर्ष.....30
- (7) निर्देश.....31
1. यह दोनों याचिकाएँ अपीली आदेश दिनांक 30.07.2005 के विरुद्ध उत्पन्न हुई हैं, जो कि जिला एवं सत्र न्यायाधीश, करौली द्वारा सत्र प्रकरण सं. 36/2002 में पारित किया गया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं - राजेश, कला @ रामगिलास, चैत्रु @ चतुर्भुज और पप्पू @ चंद्र प्रकाश के विरुद्ध अपराध धारा 148, 458, 323, 324, 326, 396 एवं 397 भारतीय दंड संहिता तथा राजस्थान डकैत प्रभावित क्षेत्र अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किए गए। इसी समय, उसी अपीली आदेश द्वारा, अभियुक्त व्यक्तियों अर्थात् शिव सिंह, सोधे @ सोरण सिंह तथा रामखिलाड़ी @ ककैया को उन अपराधों से मुक्त कर दिया गया, जिनके लिए उनके विरुद्ध आरोप पत्र पेश किया गया था।
2. अपीली आदेश दिनांक 30.07.2005 से आहत होकर, राजेश, कला @ रामगिलास, चैत्रु @ चतुर्भुज और पप्पू @ चंद्र प्रकाश ने इस न्यायालय में एस.बी. आपराधिक

पुनरीक्षण याचिका सं. 793/2005 प्रस्तुत की है और इसी आदेश से आहत होकर राज्य ने एस.बी. आपराधिक पुनरीक्षण याचिका सं. 926/2005 प्रस्तुत की है। चूंकि ये दोनों याचिकाएँ एक ही आदेश से उत्पन्न हुई हैं, अतः दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद ये दोनों याचिकाएँ इस सामान्य आदेश द्वारा निर्णयार्थ प्रस्तुत की जाती हैं।

**तथ्यगत स्थिति:-**

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि परिवादी-बृज मोहन ने थाना सपोटरा, जिला करौली में 13.01.2002 को रिपोर्ट दी, जिसमें यह उल्लेख किया गया कि लगभग 2:30 बजे रात्रि को, जब वह अपने मकान के गलियारे में सो रहा था और उसकी पत्नी व बेटी एक कमरे में तथा उसका पुत्र एवं पुत्रवधू दूसरे कमरे में सो रहे थे, तभी 5-6 व्यक्ति उसके मकान में घुसे और उस पर हमला किया। अभियुक्तों में से एक व्यक्ति ने उसपर चाकू से चोट पहुंचाने का प्रयास किया, जिसे उसने अपने हाथ से रोक लिया, तब बाकी अभियुक्तों ने उस पर लाठी से हमला किया। उसकी आवाज सुनकर, जब उसकी पत्नी और पुत्र अपने-अपने कमरों से बाहर आए, तो अभियुक्तों ने उन पर भी चाकू और लाठियों से हमला करके चोट पहुंचाई, जिससे उनकी हालत गंभीर हो गई। उसकी पत्नी विजय लक्ष्मी और पुत्री रेखा के पहने हुए गहने अभियुक्तों ने छीन लिए तथा कमरे में रखी नकदी और अन्य गहने भी ले गए। अभियुक्त पैंट और शर्ट पहने हुए थे और उनकी आयु 25 से 35 वर्ष के बीच थी और वह अभियुक्तों को पहचानता नहीं था, लेकिन उन्हें देखकर पहचान सकता है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख था कि पड़ोसी - गोविन्द सिंघल और रूपचंद भी उसके घर में हुई हलचल की आवाज सुनकर वहां आ गए।

इस रिपोर्ट के आधार पर, अपराध संख्या 7/2002 थाना सपोटरा, जिला करौली में धारा 396 व 397 भारतीय दंड संहिता के अपराध के तहत पंजीकृत हुआ और जाँच के दौरान आरोप पत्र याचिकाकर्ताओं — राजेश, कला @ रामगिलास, चैत्रु @ चतुर्भुज और पप्पू @ चंद्र प्रकाश — के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया। इसके बाद प्रथम पूरक आरोप पत्र याचिकाकर्ता शिव सिंह के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया और दूसरा पूरक आरोप पत्र सोधे @ सोरण सिंह तथा ककैया @ रामखिलाड़ी के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया। ये तीनों आरोप पत्र संकलित किए गए और उसके पश्चात अपील आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा उपरोक्त अभियुक्तों — राजेश, कला @ रामगिलास, चैत्रु @ चतुर्भुज और पप्पू @ चंद्र प्रकाश — तथा अन्य सह-अभियुक्त शिव सिंह, सोधे @ सोरण सिंह और रामखिलाड़ी @ ककैया को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया।

#### याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ:-

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि एफ.आई.आर. में परिवादी ने इनमें से किसी का भी नाम हमलावरों के रूप में नहीं लिया है तथा एफ.आई.आर. अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज की गई थी। अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि एफ.आई.आर. दर्ज होने के तुरंत बाद, उसी दिन अर्थात् दिनांक 13.01.2002 को परिवादी का बयान भी दर्ज किया गया, जिसमें भी उसने किसी अभियुक्त का नाम नहीं लिया। गवाह सीमा और रेखा के बयान 14.01.2002 को दर्ज किए गए, जिनमें तीन अभियुक्त व्यक्तियों — राजेश, कला @ रामगिलास, चैत्रु @ चतुर्भुज — के नाम उल्लेखित थे और अभियुक्त पप्पू का नाम अभी तक नहीं था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चार

दिन से अधिक समय बीतने के बाद, परिवादी बृजमोहन का पूरक बयान दर्ज किया गया, जिसमें पहली बार पांच अभियुक्त व्यक्तियों — कला, राजेश, चतुर्भुज, पप्पू मीणा और हंसराज मीणा — के नाम का उल्लेख किया गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपने बयान में परिवादी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया और बताया कि अभियुक्त व्यक्तियों और उसके परिवार के बीच पारिवारिक विवाद था। अधिवक्ता ने और प्रस्तुत किया कि उपरोक्त चार अभियुक्त — राजेश, कला @ रामगिलास, चैत्रु @ चतुर्भुज और पप्पू @ चंद्र प्रकाश — को पुलिस द्वारा दिनांक 13.01.2002 से 24.01.2002 तक अवैध हिरासत में रखा गया, बिना गिरफ्तारी किए, और इन परिस्थितियों में अभियुक्तों के परिवार के सदस्यों द्वारा उनके तलाश के लिए धारा 97 दंप्रसं के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किया गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इन परिस्थितियों में, उपरोक्त चार अभियुक्तों की औपचारिक गिरफ्तारी 24.01.2002 को दर्ज की गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उनके विरुद्ध किसी भी प्रकार का सबूत उपलब्ध नहीं था, फिर भी उन्हें उपरोक्त अपराधों के लिए आरोपित किया गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इसी बीच, 30.05.2002 को पुलिस महानिदेशक तथा पुलिस के अपर महानिदेशक को पुलिस अधीक्षक भरतपुर से एक फैंक्स सन्देश प्राप्त हुआ, जिसमें उल्लेख था कि डकैतों के एक गिरोह को गिरफ्तार किया गया, जिसमें एक आरोपी शिव सिंह गिरफ्तार हुआ, और उसकी पूछताछ के दौरान उसने स्वीकार किया कि परिवादी बृजमोहन के घर पर डकैती उसकी गैंग द्वारा की गई थी। दिनांक 13.01.2002 को, जिसमें परिवादी की पत्नी अर्थात् विजय लक्ष्मी की हत्या कर दी गई थी और इस संबंध में एक एफ.आई.आर. दर्ज की गई अर्थात् एफआईआर संख्या

7/2002, जो कि धारा 396, 397 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दर्ज की गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त फैक्स संदेश के आधार पर पुलिस द्वारा जांच आगे बढ़ाई गई और इसके पश्चात प्रथम पूरक आरोप पत्र अभियुक्त शिव सिंह के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया और धारा 173(8) दंप्रसं के तहत जांच शेष अभियुक्तों के विरुद्ध लंबित रखी गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इसी बीच, पुलिस के अतिरिक्त महानिदेशक ने पुलिस अधीक्षक, करौली को पत्र भेजकर याचिकाकर्ताओं की रिहाई हेतु धारा 169 दंप्रसं के तहत आवेदन प्रस्तुत करने की सिफारिश की। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त अतिरिक्त डीजीपी की सिफारिश के आधार पर, याचिकाकर्ताओं की रिहाई के पक्ष में धारा 169 दंप्रसं के तहत आवेदन प्रस्तुत किया गया, हालांकि विद्वान अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट, करौली द्वारा 12.11.2002 के आदेश के माध्यम से, मामले के गुण-दोष में प्रवेश किए बिना, केवल तकनीकी आधार पर, कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद मामला सत्र न्यायालय को विचारार्थ भेजा गया था, उक्त आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया। फलस्वरूप, इन परिस्थितियों में, न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय 'फंक्टस ऑफिशियो' हो गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इसके पश्चात राज्य द्वारा धारा 321 दंप्रसं के तहत याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध अभियोजन प्रकरण वापस लेने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया, किंतु उक्त आवेदन को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा 16.12.2002 के अपीली आदेश के माध्यम से केवल तकनीकी आधार पर, कि लोक अभियोजक द्वारा धारा 321 दंप्रसं में प्रस्तुत आवेदन में कोई कारण उल्लेखित नहीं था, अस्वीकृत कर दिया गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त आदेश दिनांक 16.12.2002 को याचिकाकर्ताओं द्वारा इस

न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। एस.बी. क्रिमिनल रिवीजन पिटीशन संख्या 77/2003 की दाखिला द्वारा, हालाँकि उक्त याचिका इस न्यायालय द्वारा 09.06.2003 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ताओं ने माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (क्रिमिनल) सीआरएलएमपी संख्या 994/2003 प्रस्तुत की; हालाँकि, उक्त याचिका भी 21.11.2003 को अस्वीकार कर दी गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इसी बीच, दूसरी चार्जशीट सह-अभियुक्त सोनदे @ सोरण, ककैया @ रामखिलाड़ी एवं अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध प्रस्तुत की गई, जिनकी मृत्यु हो गई है एवं जांच सह-अभियुक्त मुतैया @ मटादीन तथा पप्पू के विरुद्ध लंबित रखी गई तथा मूल अभियुक्त हंसराज मीणा के विरुद्ध जांच बंद कर दी गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब अभियोजन को यह स्पष्ट हो गया कि याचिकाकर्ता उपरोक्त घटना में शामिल नहीं थे, तभी उनकी रिहाई के लिए धारा 169 दंप्रसं के तहत एवं अभियोजन वापसी के लिए धारा 321 दंप्रसं के तहत आवेदन प्रस्तुत किए गए। इसलिए इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध न मुकदमा चलाया जा सकता है और न ही कोई आरोप तय किया जा सकता है। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आगे चलकर अभियोजन द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों पर यह अलग सिद्धांत प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता उपरोक्त कथित घटना में शामिल नहीं थे, बल्कि इसमें अन्य सह-अभियुक्त व्यक्ति शामिल थे, इसी कारण उनके विरुद्ध प्रथम एवं द्वितीय पूरक चार्जशीट प्रस्तुत की गई और शेष अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 173(8) दंप्रसं के अंतर्गत जांच अभी भी लंबित है। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि



धारा 225 दंप्रसं के अनुसार सत्र न्यायालय में अभियोजन लोक अभियोजक द्वारा संचालित किया जाना चाहिए, परंतु इस मामले में लोक अभियोजक याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध अभियोजन चलाने के इच्छुक नहीं हैं तथा याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध मुकदमा खोलने के लिए तैयार नहीं हैं, तो इन परिस्थितियों में, परीक्षण न्यायालय के पास याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध आरोप तय करने का कोई कारण या अवसर नहीं था। अतः, इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप उचित है। अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भी भरोसा किया है, जो कि मामले - लकोज़ ज़कारिया @ ज़क बनाम जोसेफ जोसेफ एवं अन्य, जो 2022 लाइव लॉ (एससी) 230 में प्रकाशित है - में दिया गया है।

#### लोक अभियोजक की ओर से प्रस्तुतियाँ :-

5. इसके विपरीत, माननीय लोक अभियोजक ने याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत की गई दलीलों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि परीक्षण न्यायालय ने 30.07.2005 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध सही ढंग से आरोप तय किए हैं और आगे यह भी प्रस्तुत किया कि माननीय सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त शिव सिंह, सोनदे @ सोरण सिंह और रामखिलाड़ी @ ककैया को आरोप से मुक्त करते समय गलती की है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उनके विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियुक्त शिव सिंह की पहचान गवाह प्यारेलाल द्वारा टेस्ट आईडेंटिफिकेशन परेड के दौरान की गई और एक लाठी भी उसके कथन पर बरामद की गई। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपराध में प्रयुक्त हथियार, अर्थात् चाकू तथा देशी

बंदूक, सोनदे @ सोरण सिंह व रामखिलाडी @ ककैया के कथन पर बरामद किए गए। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त तीन अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य उपलब्ध था, इसी कारण उनके विरुद्ध अलग-अलग पूरक आरोप पत्र प्रस्तुत किए गए। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इन तीनों अभियुक्तों को आरोप से मुक्त करते हुए माननीय सत्र न्यायाधीश ने साक्षियों के बयानों की गहनता से जांच की, जबकि आरोप तय करने की अवस्था पर केवल प्रथम दृष्टया मामला देखना आवश्यक होता है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोप तय करने की अवस्था पर, न्यायालय को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का बहुत गहराई से विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि केवल प्रथम दृष्टया मामला देखना जरूरी होता है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस अवस्था पर आरोप तय करने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 के विरुद्ध आरोप विधिपूर्वक तय किए गए, परंतु शिव सिंह, सोनदे @ सोरण सिंह एवं रामखिलाडी @ ककैया को आरोप से मुक्त करने वाला आदेश अवैध है और विधि की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है तथा इस आदेश को निरस्त और हटाया जाना अपेक्षित है।

**अपराधिक/प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतियाँ, अपराधिक पुनरीक्षण याचिका सं. 926/2005 में:-**

6. इसके विपरीत, अभियुक्त/प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण सं. 926/2005 में प्रस्तुत की गई दलीलों का विरोध किया, जो माननीय लोक अभियोजक द्वारा उठाई गई थी, और प्रस्तुत किया कि एफ.आई.आर. में तथा घायल और

अन्य प्रत्यक्षदर्शी गवाहों के बयानों में अभियुक्त व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इन अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप पत्र क्यों दाखिल किया गया, इस बाबत कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था और अन्वेषण एजेंसी द्वारा प्रथम एवं द्वितीय पूरक आरोप पत्र दाखिल कर आरोपितों को झूठा फंसाया गया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मात्र चाकू के हथियार की बरामदगी के आधार पर, उन्हें परिवादी और उसके परिवार के सदस्यों पर किए गए अपराधों से नहीं जोड़ा जा सकता। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इनमें से किसी भी गवाह ने अभियुक्त/प्रतिवादी व्यक्तियों का नाम हमलावर के रूप में नहीं लिया है, अतः इन परिस्थितियों में, विद्वान प्रथम श्रेणी न्यायाधीश द्वारा इन्हें आरोपमुक्त करने में कोई त्रुटि नहीं की गई है, अतः इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप किया जाना उचित नहीं है।

### **विश्लेषण, चर्चाएँ एवं कारण :-**

7. बार में प्रस्तुत दलीलों को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

8. अभिलेख के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि परिवादी बृजमोहन ने दिनांक 13.01.2002 को थाना सपोटरा, जिला करौली में एफ.आई.आर. संख्या 7/2003 दर्ज कराई, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि 13.01.2002 को जब वह अपने मकान के बरामदे में सो रहा था, उसकी पत्नी और बेटी रेखा एक कमरे में तथा उसका पुत्र राम एवं पुत्रवधू पास के कमरे में सो रहे थे, तभी लगभग 2-2:30 बजे रात्रि को 5-6 व्यक्ति

मकान में घुसे और उस पर चाकू तथा लाठियों से हमला किया। उसकी आवाज सुनकर उसकी पत्नी और पुत्र बाहर निकले, तब अभियुक्तों ने उनपर भी चाकू व लाठियों से हमला कर चोट पहुँचायी, जिससे उनकी स्थिति गंभीर हो गई। वे न केवल उसकी पत्नी विजय लक्ष्मी तथा बेटी रेखा के गहने ले गए, बल्कि कमरे में रखे बॉक्स से नकदी और गहने भी ले गए। अभियुक्तों की उम्र 25-35 वर्ष के बीच थी, जिन्हें वह जानता नहीं था, परंतु देखकर पहचान सकता है। उसके पड़ोसी गोविन्द सिंह और रूपचंद के वहाँ आने पर अभियुक्त भाग गए। इसी प्रकार के बयान उसने दिनांक 13.01.2002 को पुलिस में धारा 161 दंप्रसं के अंतर्गत भी दिए।

9. इसके पश्चात, सीमा और रेखा के पुलिस बयान 14.01.2002 को दर्ज किए गए। दोनों ने कहा कि अभियुक्तों में से एक (चतुर्भुज) ने अधिक मारपीट की, “यही असली अपराधी है”। इसी बीच बाहर से आवाज आई “कल्ला और राजेश बाहर आओ, लोग जाग गए हैं”। तब ये सभी व्यक्ति भाग गए। इसी प्रकार का बयान मदन गोपाल पुत्र बृजमोहन ने 15.01.2002 को दिया।

10. घटना के चार दिन बाद, परिवादी बृजमोहन का पूरक बयान 17.01.2002 को दर्ज किया गया, जिसमें उसने कहा कि चोट लगने के कारण वह ठीक मानसिक स्थिति में नहीं था। उसने बताया कि कमरे में रोशनी थी और उसने देखा कि कल्ला, राजेश, चतुर्भुज, हंसराज और पप्पू ही वे हमलावर थे, जिन्होंने घटना को अंजाम दिया और कुछ लोग दरवाजे के पास थे, जिन्होंने चिल्लाकर कहा कि “कल्ला और राजेश बाहर आओ, लोग जाग चुके हैं”।

11. इसी प्रकार के बयान बृजमोहन के पुत्र रामू ने 20.01.2002 को दिए।
12. इन गवाहों के बयानों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं को 24.01.2002 को गिरफ्तार किया गया।
13. इन गवाहों के साक्ष्य के आधार पर, याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध दिनांक 22.04.2002 को धारा 148, 323, 324, 326, 307, 302, 395, 396, 397 एवं 458 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और सह-अभियुक्त हंसराज के विरुद्ध अनुसंधान धारा 173(8) दंप्रसं के तहत लंबित रखा गया।
14. याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध सक्षम न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल किए जाने के बाद, 30.05.2002 को पुलिस अधीक्षक, भरतपुर द्वारा पुलिस महानिदेशक, जयपुर को एक फैक्स संदेश भेजा गया जिसके अनुसार एक टीम का गठन किया गया, जो विभिन्न स्थानों पर डकैती एवं लूट की घटनाएँ करने वाले एक अंतर्राज्यीय गिरोह के संबंध में जांच करेगी। एक अभियुक्त शिव सिंह @ हरि सिंह को 30.05.2002 को गिरफ्तार किया गया और उसकी पूछताछ में उसने अपने साथ अन्य गिरोह सदस्यों सहित कई घटनाओं के बारे में बताया, जिसमें 13.01.2002 को बृजमोहन के घर हुई डकैती की घटना भी शामिल थी, जिसमें उसकी पत्नी विजय लक्ष्मी की हत्या कर दी गई थी और जिसके लिए थाना सपोटरा, जिला करौली में एफआईआर संख्या 7/2002 धारा 396 एवं 397 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दर्ज की गई थी।

15. इसके बाद, तत्कालीन एफआईआर संख्या 7/2002 थाना सपोटरा द्वारा आगे जांच की गई और अभियुक्त हरि सिंह @ शिव सिंह को गिरफ्तार किया गया तथा उसकी टेस्ट आइडेंटिफिकेशन परेड (टी आई पी) कराई गई, जिसमें गवाह प्यारेलाल ने उसकी पहचान की और उसकी निशानदेही पर एक लाठी बरामद की गई। जांच के बाद, प्रथम पूरक आरोप पत्र उसके साथ अन्य अभियुक्त सियाराम (अब मृतक), जिसने पुलिस हिरासत में फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी, के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया। इन दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र पेश करते समय, 08.10.2002 को शेष जांच धारा 173(8) दंप्रसं के तहत सह-अभियुक्त हंसराज मीणा, ककैया @ रामखिलाड़ी, मुतैया @ मटादीन, सोनदे @ सोरण, पप्पू, राजेन्द्र @ खन्ना, बाबू @ रामबाबू, दशरथ, नाथी और वीर सिंह के विरुद्ध लम्बित रखी गई।

16. आगे की जांच के दौरान, अभियुक्त सोनदे @ सोरण और ककैया @ रामखिलाड़ी को क्रमशः 25.04.2004 तथा 20.07.2004 को गिरफ्तार किया गया और अभियुक्त बाबू @ रामबाबू तथा राजेन्द्र @ खन्ना की मृत्यु हो गई, अतः अभियुक्त प्रतिवादी सोनदे @ सोरण और ककैया @ रामखिलाड़ी के विरुद्ध धारा 396, 397, 307 तथा 302 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत द्वितीय पूरक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, तथा शेष अभियुक्तों के विरुद्ध जांच अब भी लंबित है। किन्तु अब सह-अभियुक्त हंसराज मीणा को विवेचना से बाहर कर दिया गया है तथा उसके विरुद्ध कोई जांच लंबित नहीं है।

17. इसी दौरान, पुलिस महानिदेशक, जयपुर ने पुलिस अधीक्षक, करौली को अनुशंसा की कि वे धारा 169 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं को साक्ष्य अपर्याप्त मानकर रिहा करने हेतु आवेदन प्रस्तुत करें। उक्त अनुशंसा के आधार पर, पुलिस अधीक्षक, करौली ने लोक अभियोजक के माध्यम से अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट, करौली की अदालत में धारा 169 दंप्रसं के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किया, जिसका परिवादी ने विरोध किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने 12.11.2002 के आदेश के माध्यम से उक्त आवेदन यह देखते हुए अस्वीकार कर दिया कि आरोपपत्र प्रस्तुत होने के बाद मामला विचारण हेतु सत्र न्यायालय को भेज दिया गया है, तथा न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय “फंक्टस ऑफिशियो” हो गया है। आदेश में यह भी अवलोकन किया गया कि आरोप पत्र प्रस्तुत होने के बाद अन्वेषण एजेंसी की भूमिका समाप्त हो जाती है, तथा पुलिस द्वारा धारा 169 दंप्रसं के अंतर्गत अभियुक्त याचिकाकर्ताओं की रिहाई के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। धारा 169 दंप्रसं के प्रावधान आरोप पत्र प्रस्तुत होने से पूर्व ही लागू होते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि दिनांक 12.11.2002 के उक्त आदेश को न अभियोजन विभाग अर्थात् राज्य द्वारा और न ही याचिकाकर्ताओं द्वारा किसी उच्चतर न्यायालय में चुनौती दी गई।

18. अभियोजन द्वारा धारा 169 दंप्रसं के तहत आवेदन अस्वीकार किए जाने के बाद, अभियोजन ने सत्र न्यायाधीश, करौली की अदालत में चार याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध

अभियोजन वापस लेने के लिए धारा 321 दंप्रसं के अंतर्गत एक अन्य आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त आवेदन को परीक्षण न्यायाधीश द्वारा 16.12.2002 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाए जाने पर, परीक्षण न्यायाधीश का विचार था कि अभियोजन मामले की वापसी जनहित में नहीं है, और एक कारणसहित तथा स्पष्ट आदेश पारित करते हुए, अनेक कारण बताते हुए, आवेदन को 16.12.2002 के आदेश के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया।

19. उपर्युक्त आदेश दिनांक 16.12.2002 से आहत होकर, याचिकाकर्ताओं तथा राज्य यानी अभियोजन ने दो अलग-अलग पुनरीक्षण याचिकाएँ प्रस्तुत की: एस.बी. आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 378/2003 और एस.बी. आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 77/2003, जो इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गईं, और दोनों पुनरीक्षण याचिकाएँ इस न्यायालय द्वारा दिनांक 09.06.2003 के सामूहिक आदेश द्वारा अस्वीकार कर दी गईं, जिसका पुनरुत्पादन नीचे किया गया है:-

“चूंकि दोनों पुनरीक्षण याचिकाएँ एक ही आदेश दिनांक 16.12.2002 से उत्पन्न हुई हैं, जो कि जिला एवं सत्र न्यायाधीश, करौली द्वारा पारित किया गया, जिसके द्वारा राज्य की ओर से धारा 321 दंप्रसं के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया, अतः पक्षकारों के अधिवक्ताओं के अनुरोध पर दोनों पुनरीक्षण याचिकाएँ एक साथ सुनी जा रही हैं और इस सामान्य आदेश द्वारा उनका निर्णय किया जा रहा है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने के बाद, मैंने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और वर्तमान पुनरीक्षण याचिकाओं में चुनौती दिए गए आदेश का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है।



घटना जो कि 13.01.2002 और 14.01.2002 की मध्य रात्रि को लगभग 2:00 बजे घटी, उसके संबंध में आरोप लगाया गया है। एफआईआर 2:50 दोपहर पर दर्ज की गई थी और उसके पश्चात घायल समेत कुछ गवाहों के बयान धारा 161 दंप्रसं के तहत 14.01.2002 को सुबह 7:00 बजे लिए गए। तीन घायल व्यक्तियों को कुल सत्रह चोटें आईं और मृतका को दो चोटें आईं। जांच के बाद, धारा 395, 396, 397, 148, 302, 323, 324, 326, 307, 458 आईपीसी के अन्तर्गत अपराध का आरोपपत्र अभियुक्त याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध तथा कुछ अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध दाखिल किया गया। कुछ अभियुक्त याचिकाकर्ताओं की पहली जमानत प्रार्थना इस न्यायालय द्वारा 19.08.2002 को खारिज कर दी गई और उसी अभियुक्त याचिकाकर्ताओं की दूसरी जमानत प्रार्थना भी 17.01.2003 को अस्वीकार कर दी गई।

इसी बीच, एक अन्य अपराध में पकड़े गए एक अभियुक्त के कथन के आधार पर, अभियोजन द्वारा परीक्षण न्यायालय में धारा 321 दंप्रसं के तहत आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें निवेदन था कि चार अभियुक्त याचिकाकर्ताओं — चैत्रु @ चतुर्भुज, कला @ रामगिलास, राजेश और पप्पू @ चंद्र प्रकाश — के विरुद्ध अभियोजन वापस लेने की अनुमति दी जाए। अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री पर विचार करने के बाद, न्यायालय द्वारा प्रस्तुत यह आवेदन दिनांक 16.12.2002 के अपीली आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

ऊपर अंकित घटनाक्रम के मद्देनजर, चूंकि चारों अभियुक्त याचिकाकर्ताओं के नाम प्रारंभिक अवस्था में दर्ज बयानों में दर्ज हैं, प्रथम दृष्टया यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोजन जिनके विरुद्ध मुकदमा वापस लेना चाहता है, उन्हें इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है।

वर्तमान मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, बिना मामले के गुण-दोष पर कोई अतिरिक्त टिप्पणी किए, मुझे परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित अपीली आदेश में कोई त्रुटि या अवैधता दृष्टिगोचर

नहीं होती, जिससे इस न्यायालय के और हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।  
अतः दोनों पुनरीक्षण याचिकाएँ, इनमें कोई गुण न पाते हुए, अस्वीकार की जाती हैं। परीक्षण न्यायालय का अभिलेख तत्काल वापिस भेजा जाए।”

20. उपरोक्त आदेश दिनांक 09.06.2003 से आहत और असंतुष्ट होकर, याचिकाकर्ताओं ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका (क्रिमिनल) सीआरएलएमपी संख्या 994/2003 दाखिल की, जिसे 21.11.2003 को खारिज कर दिया गया। अर्थात्, परीक्षण न्यायालय एवं इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश अंतिम रूप ग्रहण कर चुका है। एक बार जब याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध अभियोजन वापस लेने की अनुमति अस्वीकार कर दी गई, तो परीक्षण न्यायालय को कानून के अनुसार उनके विरुद्ध कार्रवाई करनी अपेक्षित थी।

21. अब, विवादित आदेश दिनांक 30.07.2005 के अनुसार, याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध धारा 148, 458, 323, 324, 326, 396, 397 आईपीसी और राजस्थान डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत अपराधों के लिए आरोप तय किए गए हैं और उसी आदेश के तहत, अभियुक्त प्रतिवादी शिव सिंह, सोनदे @ सोरण सिंह और ककैया @ रामखिलाड़ी को उन सभी अपराधों से मुक्त कर दिया गया है, जिनके लिए उनके विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल हुआ था।

22. उपर्युक्त आदेश से आहत होकर, अभियुक्त याचिकाकर्ता तथा राज्य, दोनों ही इस न्यायालय में वर्तमान दो पुनरीक्षण याचिकाएँ दाखिल कर पहुँचे हैं। याचिकाकर्ता अपने विरुद्ध सभी आरोपों से आरोपमुक्ति की मांग कर रहे हैं और राज्य उन अभियुक्त

प्रतिवादियों की आरोपमुक्ति के आदेश को निरस्त करने का आदेश माँग रहा है, जो उनके विरुद्ध अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया है।

23. अब इस न्यायालय के विचारार्थ शेष प्रश्न यह है 'क्या अभियुक्त व्यक्तियों को तीनों आरोप पत्रों में उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर आरोपमुक्त किया जा सकता है?'

**(अ) सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की स्थिति, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 228 के संदर्भ में:-**

24. यह विधि का सिद्ध सिद्धांत है कि आरोप तय करने की अवस्था पर साक्ष्य की सच्चाई, प्रमाणिकता व प्रभाव की गहराई से जाँच नहीं की जा सकती। इस अवस्था पर न्यायालय को अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री व दस्तावेजों का मूल्यांकन कर यह देखना होता है कि प्रकट तथ्य कथित अपराध के सभी तत्वों की उपस्थिति का खुलासा करते हैं या नहीं।

25. वाद – सज्जन कुमार बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, (2010) 9 एससीसी 368 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 21 में वे सिद्धांत बताए हैं, जिन्हें धारा 227 और 228 दंप्रसं के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायालय के ध्यान में रखना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:

“इस मामले में साजन कुमार बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (2010) 9 एससीसी 368, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय के पैरा 21 में उन सिद्धांतों को स्पष्ट किया है जिन्हें न्यायालय को धारा 227 और 228 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय ध्यान में रखना चाहिए, जो इस प्रकार हैं :

“(i) न्यायाधीश, जब धारा 227 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते हैं, को सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों की छंटाई और मूल्यांकन का निस्संदेह अधिकार है—यह जानने के लिए कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामला निर्धारित करने की कसौटी हर मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी।

(ii) जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री आरोपी के खिलाफ गंभीर शंका प्रकट करती है जो सही तरीके से समझाई नहीं गई है, वहाँ न्यायालय आरोप तय करने और मुकदमा चलाने के लिए पूरी तरह उचित होगा।

(iii) न्यायालय केवल अभियोजन पक्ष की बातें सुनने वाला या उसके प्रवक्ता के रूप में कार्य नहीं कर सकता, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, सबूतों और दस्तावेजों के कुल प्रभाव, किसी भी मूलभूत त्रुटियों आदि पर विचार करना चाहिए। हालांकि, इस चरण में न्यायालय को इस मामले के पक्ष-विपक्ष पर विस्तृत जांच करने और सबूतों का मूल्यांकन ऐसे करना जैसा कि वह मुकदमे का संचालन कर रहा हो—यह उचित नहीं है।

(iv) यदि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर न्यायालय यह राय बना सकता है कि आरोपी ने अपराध किया हो सकता है, तो वह आरोप तय कर सकता है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए इस निष्कर्ष को संदेह से परे सिद्ध करना आवश्यक है कि आरोपी ने अपराध किया है।

(v) आरोप तय करते समय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का प्रमाणिक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, लेकिन आरोप तय करने से पहले न्यायालय को रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री पर अपनी न्यायिक विवेक का प्रयोग करना चाहिए और यह संतुष्ट होना चाहिए कि आरोपी के द्वारा अपराध का किया जाना संभव था।

(vi) धारा 227 और 228 के चरण पर, न्यायालय को रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करना आवश्यक है, ताकि यह पता चल सके कि वहां से जो तथ्य उभरते हैं, उन्हें उनकी वास्तविकता के

अनुसार देखने पर, कथित अपराध के सभी आवश्यक तत्वों का खुलासा होता है या नहीं। इस सीमित उद्देश्य के लिए, साक्ष्य की छंटाई करनी होती है क्योंकि इस प्रारंभिक चरण में यह अपेक्षित नहीं होता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा कही गई प्रत्येक बात को पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाए, भले ही वह सामान्य बुद्धि या मामले की व्यापक संभावनाओं के विपरीत हो।

(vii) यदि दो दृष्टिकोण संभव हैं और उनमें से एक केवल संदेह उत्पन्न करता है, गंभीर संदेह नहीं, तो इस चरण पर ट्रायल जज को आरोपी को आरोपमुक्त करने का अधिकार होगा। इस समय न्यायाधीश यह देखने के लिए बाध्य नहीं है कि मुकदमा अंततः दोषसिद्धि पर समाप्त होगा या आरोपमुक्ति पर।

26. **शयोराज सिंह अहलावत एवं अन्य. बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2013)**

11 एस सी सी 476 में, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित निर्णय दिया :

“आरोप तय करते समय, न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री एवं दस्तावेजों का मूल्यांकन करे, यह तय करने के लिए कि वहाँ से जो तथ्य उभरते हैं, उनका वास्तविक अर्थ यह है कि आरोपित अपराध के आवश्यक तत्व मौजूद हैं या नहीं। इस चरण पर, न्यायालय को रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों के प्रमाणिक मूल्य में गहराई से जाने की आवश्यकता नहीं है। उसे केवल यह देखना है कि क्या ऐसा कोई आधार है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि आरोपी ने अपराध किया है। लेकिन उसे आरोपी को दोषसिद्ध करने के लिए साक्ष्यों की पर्याप्तता का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। यदि आरोपी के विरुद्ध गंभीर संदेह है जिसे ठीक से समझाया नहीं गया है या न्यायालय को लगता है कि आरोपी ने अपराध किया हो सकता है, तो आरोपी के विरुद्ध आरोप तय किया जाना उचित है। दोषसिद्धि के लिए आवश्यक है कि सामग्री यह संकेत दे कि आरोपी ने अपराध किया, लेकिन आरोप तय करने के लिए, यदि सामग्री यह इंगित करती है कि आरोपी ने अपराध किया हो सकता है, तो आरोप

निर्धारित करना उचित है। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री को सत्य मानना होगा और उनके प्रमाणिक मूल्य का निर्धारण इस चरण पर नहीं किया जा सकता। आरोपी इस चरण पर सिर्फ अभियोजन द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर ही अपने तर्क दे सकता है। अभियोग पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री के अलावा इस चरण पर आरोपी को कोई सामग्री प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है और, अगर प्रस्तुत भी की जाए, तो न्यायालय को ऐसी किसी भी सामग्री पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। प्रथम दृष्टया मामला बना है या नहीं, यह हर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि दो दृष्टिकोण संभव हों और प्रस्तुत सामग्री मात्र संदेह (गंभीर संदेह नहीं) दिखाती है, तो आरोपी को आरोपमुक्त किया जा सकता है। न्यायालय को मामले की व्यापक संभावनाओं, सबूतों तथा उसके समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों के कुल प्रभाव पर विचार करना चाहिए। न्यायालय अभियोजन पक्ष का मुखपत्र बनकर काम नहीं कर सकता और आरोप तय करने के चरण में विस्तृत जांच करना अस्वीकार्य है।

27. पुनः, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **राज्य बनाम फतेहकरन मेहदू, ए आई आर 2017 एस सी 796** मामले में, जब आरोप तय किए जा चुके थे, धारा 397 सीआरपीसी के तहत हस्तक्षेप के दायरे से संबंधित मामले में, निम्नलिखित कहा गया:

“26. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के तहत हस्तक्षेप और क्षेत्राधिकार के प्रयोग की सीमा को इस न्यायालय द्वारा बार-बार स्पष्ट किया गया है। आगे, जब आरोप तय हो गए हों, उस स्तर पर धारा 397 के तहत हस्तक्षेप की सीमा भी अच्छी तरह से स्थिर है। आरोप तय करने के चरण में, न्यायालय किसी आरोप के प्रमाण पर विचार नहीं करता, बल्कि उसे केवल सामग्री पर ध्यान केंद्रित करना और यह राय बनाना होता है कि क्या यह मजबूत संदेह बनता है कि आरोपी ने कोई अपराध किया है, जो यदि मुकदमे के दौरान सिद्ध हो जाए, तो उसकी दोषसिद्धि का कारण बन सकता है। आरोप तय करना वह चरण नहीं है जब अंतिम रूप से दोषसिद्धि के लिए प्रमाण की कसौटी लागू की जाती है। इसलिए, यह मानना कि आरोप तय करते समय न्यायालय को साफ तौर पर

यह राय बनानी चाहिए कि आरोपी ने निश्चित रूप से अपराध किया है—ऐसा मानना न तो उचित है न ही दंड प्रक्रिया संहिता की योजना के अनुरूप।

27. अब, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के तहत क्षेत्राधिकार की सीमा के संदर्भ में, जो न्यायालय को यह शक्ति देती है कि वह किसी अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों को मंगवा सकता है और उनकी जांच कर सकता है, ताकि किसी मामले में की गई प्रक्रिया या आदेश की वैधता और नियमितता को लेकर स्वयं को संतुष्ट कर सके। इस प्रावधान का उद्देश्य है किसी स्पष्ट त्रुटि, अधिकार क्षेत्र की गलती, विधि की भूल, या कार्यवाही में आई विकृति को दुरुस्त करना।

28. XX XX XX

29. न्यायालय ने पैरा 27 में अपना निष्कर्ष दर्ज किया है और सिद्धांतों को स्पष्ट किया है जो धारा 397 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए विचार करने योग्य हैं, विशेष रूप से धारा 228 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत तय किए गए आरोप को निरस्त करने के संदर्भ में। आपराधिक प्रक्रिया संहिता के पैरा 27, 27(1), (2), (3), (9), (13) को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है :

“27. इन दोनों प्रावधानों, अर्थात्, धारा 397 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार की सीमा और सूक्ष्म क्षेत्राधिकार विभाजन के संबंध में चर्चा करने के बाद, अब यह उपयुक्त होगा कि उन सिद्धांतों को सूचीबद्ध किया जाए जिनके आधार पर न्यायालयों को ऐसे क्षेत्राधिकार का उपयोग करना चाहिए। हालांकि, न केवल यह कठिन है बल्कि स्वभावतः असंभव है कि ऐसे सिद्धांतों को सटीक रूप से बताया जा सके। सर्वोत्तम रूप में और विभिन्न निर्णयों के निष्पक्ष विश्लेषण के बाद, इस न्यायालय ने वे सिद्धांत सामने रखे हैं जो उचित क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए विचार किए जाने चाहिए, विशेष रूप से आरोप को समाप्त करने के संबंध में, चाहे वह धारा 397 या धारा 482 के तहत किया जाए या दोनों मिलाकर, जैसा मामला हो:

27.1) यद्यपि धारा 482 के तहत न्यायालय की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, फिर भी इन शक्तियों के प्रयोग में अधिक सतर्कता और सावधानी बरतनी चाहिए। आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की शक्ति, विशेषकर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के अनुसार तय किए गए आरोप को निरस्त करने की शक्ति बहुत ही दुर्लभ मामलों में तथा बहुत सोच-समझकर और संयमपूर्वक प्रयोग की जानी चाहिए।

27.2) न्यायालय को यह परीक्षण लागू करना चाहिए कि क्या मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर किए गए बिना विवाद वाले आरोप प्रथम दृष्टया अपराध स्थापित करते हैं या नहीं। यदि आरोप इतने स्पष्ट रूप से बेतुके और स्वाभाविक रूप से अत्यंत असंभव हैं कि कोई समझदार व्यक्ति ऐसी निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंच सकता या अपराध के आवश्यक तत्व पूरे नहीं होते, तब न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।

27.3) उच्च न्यायालय को अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यह विचार करने के लिए कि मामला निरस्त किया जाना चाहिए, साक्ष्य की विस्तृत जांच की आवश्यकता नहीं है। आरोप तय करने या आरोप निरस्त करने के चरण पर यह देखना आवश्यक नहीं है कि मामला दोषसिद्धि पर समाप्त होगा या नहीं।

27.9) न्यायालयों को एक और बहुत ही महत्वपूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए कि वे तथ्यों, सबूतों और रिकार्ड पर मौजूद सामग्रियों की इस दृष्टि से जांच नहीं कर सकते कि क्या इन आधारों पर मामला दोषसिद्धि तक पहुँचेगा या नहीं; न्यायालय का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि सभी आरोपों को समग्र रूप से देखने पर क्या वे कोई अपराध बनाते हैं और, यदि हाँ, तो क्या यह न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है जो अन्याय की ओर ले जाएगा।



27.13) आरोप का निरस्तीकरण अपवाद स्वरूप है—निरंतर अभियोजन की प्रक्रिया का सिद्धांत लागू है। जहाँ अपराध के आवश्यक तत्व मोटे तौर पर भी संतुष्ट हो जाते हैं, न्यायालय को आरोप की निरस्तीकरण की तुलना में अभियोजन की प्रक्रिया को आगे बढ़ने देना अधिक उपयुक्त समझना चाहिए। इस प्रारंभिक चरण पर न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह रिकार्डों को इतनी गहराई से देखे कि दस्तावेजों की ग्राह्यता और विश्वसनीयता का निर्णय ले सके; बल्कि केवल प्रथम दृष्टया राय बनाना पर्याप्त है।

30. उपरोक्त परीक्षणों को लागू करते हुए, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने आरोपों को दिनांक 05.05.2009 के आदेश द्वारा समाप्त (रद्द) करने में त्रुटि की। परिणामस्वरूप, दोनों अपीलें स्वीकृत की जाती हैं। उच्च न्यायालय का आदेश निरस्त किया जाता है और 05.05.2009 का आदेश पुनर्स्थापित किया जाता है। सम्बंधित विशेष न्यायाधीश को निर्देशित किया जाता है कि वे विधि के अनुसार शीघ्रता से मुकदमा आगे बढ़ाएँ।“

28. **भावना बाई बनाम घनश्याम (2020) 2 एससीसी 217** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आरोप तय करने के समय केवल प्रथम दृष्टया मामला देखना आवश्यक है, यह देखना कि मामला संदेह से परे है या नहीं, इस चरण पर आवश्यक नहीं है। आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को केवल यह देखना होता है कि आरोपी के विरुद्ध आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। प्रस्तुत सामग्रियों का मूल्यांकन करते समय प्रमाण का सख्त मानक आवश्यक नहीं है, केवल प्रथम दृष्टया मामला देखना पर्याप्त है।

यह माना गया है कि धारा 228 सीआरपीसी के तहत आरोप तय करते समय न्यायाधीश को विस्तार से कारण लिखने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा आरोप क्यों

तय किया जा रहा है। अभिलेख के अवलोकन तथा पक्षकारों की सुनवाई के बाद यदि न्यायाधीश इस राय पर पहुंचता है कि यह मानने के लिए पर्याप्त आधार है कि आरोपी ने अपराध किया है, जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो वह आरोपी के विरुद्ध ऐसे अपराध का आरोप तय करेगा।

29. हाल ही में, **राज्य बनाम दिलीपसिंह किशोरसिंह राव**, आपराधिक अपील संख्या 2504/2023 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि आरोप तय करने के चरण पर मुख्य विचार प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व की कसौटी है, और इस चरण पर रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों के प्रमाणिक मूल्य में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है। निर्णय के पैरा 12 और 13 में निम्नानुसार कहा गया है :

12. आरोप तय करने के चरण पर मुख्य विचार प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व की जांच करना है, और इस चरण पर रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के प्रमाणिक मूल्य की गहराई से जांच करने की आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम सोम नाथ थापा (1996) 4 एससीसी 659 और मध्यप्रदेश राज्य बनाम मोहनलाल सोनी (2000) 6 एससीसी 338 जैसे पूर्व के निर्णयों का उल्लेख करते हुए यह माना है कि आरोप तय करने के चरण पर न्यायालय द्वारा किया जाने वाला मूल्यांकन केवल प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व की जांच तक सीमित है। यह भी माना गया है कि आरोप तय करने के चरण पर न्यायालय को कथित अपराध के तत्वों की वास्तविकता के अस्तित्व के संबंध में केवल एक अनुमानित राय बनानी होती है और अपेक्षा नहीं की जाती कि वह रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के प्रमाणिक मूल्य में गहराई से जाए या यह जांचे कि क्या रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री मुकदमे की समाप्ति पर निश्चित रूप से दोषसिद्धि तक ले जाएगी।

13. धारा 397 सीआरपीसी के तहत उच्चतर न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार, जो न्यायालय को यह अधिकार देती है कि वह किसी अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों को मंगवाकर और उनका परीक्षण कर सके, उसका उद्देश्य इस बात से स्वयं को संतुष्ट करना है कि किसी मामले में की गई कार्यवाही या आदेश की वैधता और नियमितता बनी हुई है। इस प्रावधान का उद्देश्य किसी स्पष्ट दोष, क्षेत्राधिकार या विधि की गलती, या कार्यवाही में आई किसी विकृति को ठीक करना है। इस न्यायालय द्वारा अमित कपूर बनाम रमेशचन्द्र (2012) 9 एससीसी 460 के निर्णय का संदर्भ देना उपयुक्त होगा, जिसमें धारा 397 के दायरे पर विचार करते हुए उसे संक्षिप्त रूप से स्पष्ट किया गया है।

“12. संहिता की धारा 397 न्यायालय को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह किसी अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों को मंगवाकर और उनका परीक्षण कर सके, ताकि वह किसी मामले में की गई कार्यवाही या आदेश की वैधता और नियमितता से स्वयं को संतुष्ट कर सके। इस प्रावधान का उद्देश्य किसी स्पष्ट दोष या अधिकार क्षेत्र/कानून की त्रुटि को ठीक करना है। इसके लिए कोई ठोस त्रुटि होनी चाहिए और आवश्यक नहीं कि न्यायालय उन आदेशों की जांच करे, जिनसे प्रथम दृष्टया स्पष्ट होता हो कि उसमें सावधानीपूर्वक विचार किया गया है और वह विधि के अनुरूप है। यदि इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि पुनरीक्षणीय क्षेत्राधिकार वहीं प्रयुक्त किया जा सकता है, जहाँ विवादित निर्णय गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण हैं, विधि के प्रावधानों का पालन नहीं हुआ है, अभिलेखित निष्कर्ष किसी सबूत पर आधारित नहीं है, महत्वपूर्ण साक्ष्य की उपेक्षा की गई है, अथवा न्यायिक विवेक का प्रयोग मनमाने या विकृत रूप में किया गया है। ये सभी श्रेणियाँ अन्तिम नहीं हैं, बल्कि केवल सांकेतिक हैं। प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाएगा।

13. एक अन्य सुप्रसिद्ध मान्यता यह है कि उच्च न्यायालय का पुनरीक्षणीय क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है और नियमित रूप से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। अंतर्निहित प्रतिबंधों में से एक यह है कि इसका प्रयोग किसी अंतरिम या मध्यवर्ती आदेश के विरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि पुनरीक्षणीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग स्वयं अन्याय की ओर न ले जाए। जहाँ न्यायालय यह देख रहा हो कि आरोप उचित तरीके से और कानून के अनुरूप तय किया गया है या नहीं, ऐसे मामले में, न्यायालय अपने पुनरीक्षणीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने में झिझक दिखा सकता है—जब तक कि मामला ऊपर उल्लिखित श्रेणियों के अंतर्गत पर्याप्त रूप से न आता हो। आरोप तय करना क़पीसी की कार्यवाही में एक बहुत उन्नत चरण होता है।“

30. अतः, यह एक सुव्यवस्थित विधिक स्थिति है कि किसी आरोपी के विरुद्ध अपराध के आरोप तय करने के चरण पर, प्रथम दृष्टया यह देखना होता है कि अभिलेख पर उन पर कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार उपलब्ध हैं या नहीं, और यहाँ तक कि मजबूत संदेह भी आरोप तय करने के लिए पर्याप्त है। कार्यवाही के इस चरण पर साक्ष्यों का विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है, जैसा कि अंतिम चरण में, अर्थात्, परीक्षण के बाद आवश्यक होता है।

31. इस न्यायालय को याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों में कोई सार नहीं दिखता, जिसमें कहा गया था कि प्रारंभ में एफ.आई.आर. तथा शिकायतकर्ता बृज मोहन के पहले पुलिस वक्तव्य में आरोपियों का नाम नहीं था, बल्कि 2-4 दिन बाद साक्षी सीमा, रेखा व शिकायतकर्ता बृज मोहन के पूरक बयानों में उनके नाम सामने आए। याचिकाकर्ताओं के

नाम इन बयानों में आए हैं, जो प्रथम दृष्टया घटना में उनकी संलिप्तता दिखाते हैं। वास्तव में वे शामिल थे या झूठा फंसाए गए थे, यह तथ्य ट्रायल कोर्ट द्वारा उचित चरण पर, जब अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए जाएंगे, तब देखा जाएगा।

32. याचिकाकर्ताओं को पुलिस द्वारा 13.01.2002 से 23.01.2002 तक अवैध रूप से हिरासत में रखा गया था या नहीं, इस तथ्य का निपटारा उपयुक्त न्यायालय द्वारा एक अलग शिकायत में किया जाएगा, यदि उन्होंने सक्षम न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई शिकायत की हो।

**(बी) लोक अभियोजक की भूमिका और धारा 225 तथा 226 सीआरपीसी के प्रावधान :**

33. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का अन्य तर्क यह है कि अभियोजन और लोक अभियोजक से अपेक्षा की जाती है कि वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 225 और 226 के तहत निहित प्रक्रिया एवं प्रावधानों के अनुसार कार्य करें।

34. धारा 225 सीआरपीसी के अनुसार, सत्र न्यायालय में प्रत्येक मुकदमे में अभियोजन कार्य लोक अभियोजक द्वारा ही किया जाएगा। इसी प्रकार, धारा 226 सीआरपीसी के अनुसार, जब अभियुक्त उपस्थित होता है या उसे सत्र न्यायालय के समक्ष धारा 209 सीआरपीसी के अंतर्गत पेश किया जाता है, तो अभियोजन अपने मामले की शुरुआत इस प्रकार करेगा कि उस पर कौन सा आरोप है और किन साक्ष्यों के आधार पर आरोपी का दोष प्रमाणित किया जाएगा। इसके बाद, मामले की सामग्री को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय आरोपी के विरुद्ध आरोप तय कर सकता है या उसे आरोपमुक्त कर सकता है।

35. यह सत्य है कि अभियोजन द्वारा याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई समाप्त करने के लिए दो बार प्रयास किया गया; पहला प्रयास धारा 169 सीआरपीसी के तहत आवेदन दाखिल कर याचिकाकर्ताओं को रिहा कराने के रूप में तथा दूसरा प्रयास धारा 321 सीआरपीसी के तहत अभियोजन वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल कर किया गया। लेकिन अभियोजन के दोनों प्रयास असफल रहे क्योंकि इन दोनों आवेदन को अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा ठुकरा दिया गया और उस पर पारित आदेश अंतिम हो गए। अब, इन तथ्यों और परिस्थितियों में, लोक अभियोजक का कानूनन दायित्व है कि वह आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन चलाए और अभियोजन को धारा 225 और 226 सीआरपीसी के तहत अपने मामले की शुरुआत आरोपों को स्पष्ट करते हुए करनी है, जो आरोपियों के विरुद्ध लगाए गए हैं।

यह उल्लेखनीय है कि आश्चर्यजनक रूप से लोक अभियोजक ने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में लिखित तर्क प्रस्तुत किए और उनके आरोपमुक्त किए जाने, तथा शिव सिंह, सोंडे @ सोरेन सिंह और कैकैया उर्फ रामखिलाड़ी के खिलाफ आरोप तय किए जाने के लिए प्रार्थना की। अभियोजन की ऐसी कार्यवाही उचित नहीं है और इसकी आलोचना की जानी चाहिए। लोक अभियोजक को यह अधिकार नहीं है कि वह ट्रायल कोर्ट से याचिकाकर्ता छत्रभुज, चंद्र प्रकाश, रामगिलास और राजेश को आरोपमुक्त करने का अनुरोध करे, जब अभियोजन द्वारा धारा 321 सीआरपीसी के तहत दाखिल आवेदन न केवल ट्रायल कोर्ट बल्कि इस न्यायालय व माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी खारिज कर दिया गया हो। अतः, ऐसी परिस्थितियों में, लोक अभियोजक का कर्तव्य है कि वह धारा 225 और 226

सीआरपीसी के तहत अनिवार्य प्रावधानों का पालन करे। लोक अभियोजक एवं अभियोजन की ऐसी कार्यप्रणाली।

36. लोक अभियोजक को न्यायालय का एक अधिकारी माना जाता है और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह किसी भी मामले में सत्य का पता लगाने में न्यायालय की सहायता करेगा। अभियोजक को निस्संदेह पूरे उत्साह और सावधानी के साथ अभियोजन करना होता है ताकि सत्य पता चल सके और अपराधी को उपयुक्त दंड मिल सके—यह उच्च सार्वजनिक हित की सेवा है। मामले का अभियोजन करते समय उसे लोक हित की रक्षा करनी होती है, और लोक हित यह भी माँगता है कि मुकदमे का संचालन निष्पक्ष ढंग से किया जाए।

37. लोक अभियोजक राज्य का एक कर्मचारी है जिसकी नियुक्ति न्यायालय की सहायता के लिए की जाती है ताकि मुकदमा निष्पक्ष रूप से चले, जिसका मुख्य उद्देश्य सच का पता लगाना और यदि आरोपी दोषी पाया जाए तो उसे कानून और प्रक्रिया के ज्ञात नियमों के अनुसार दंडित करना है। उसका स्पष्ट कार्य यह है कि वह न्यायालय के समक्ष ऐसे सभी तथ्य रखे, जिन्हें वैधानिक रूप से परीक्षण में प्रस्तुत किया जा सकता है। भले ही राज्य के सभी कदम न्यायसंगत, उचित और तर्कसंगत हों, फिर भी, एक राज्य के अधिकारी के रूप में लोक अभियोजक की यह जिम्मेदारी होती है कि वह न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित ढंग से अपनी जिम्मेदारी निभाए, मुकदमे के परिणाम की परवाह किए बिना। इस संदर्भ में वह न्यायिक व्यवस्था का हिस्सा होता है और एक ईमानदार

लोक अभियोजक के न्यायालय में कोई मित्र या शत्रु नहीं होते। उसके मन में कोई पूर्वाग्रह, पूर्वनिर्धारित विचार, पक्षपात, द्वेष या स्वयं का कोई निहित स्वार्थ नहीं होना चाहिए। वह सार्वजनिक हित का प्रतिनिधित्व करता है लेकिन संकीर्ण अर्थ में पक्षकार नहीं होता है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह “पूरी ईमानदारी और निष्पक्षता” के साथ कार्य करे और अभियोजन का मामला न्यायालय के सामने रखे। उसे संपूर्ण और निष्पक्ष चित्र प्रस्तुत करना चाहिए, न कि एकतरफा तस्वीर। सत्र न्यायालय में आपराधिक मामलों की प्रणाली में लोक अभियोजक का कार्यालय अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अभियोजन चलाते समय लोक अभियोजक की अपेक्षित प्रवृत्ति निष्पक्षता से युक्त होनी चाहिए—न केवल न्यायालय के प्रति, बल्कि जांच एजेंसियों के प्रति भी।

38. वर्तमान मामले में, जांच एजेंसी ने तीन बार जांच की और सात अभियुक्तों के विरुद्ध तीन अलग-अलग आरोप पत्र प्रस्तुत किए, जिसमें चार याचिकाकर्ता और तीन अभियुक्त प्रतिवादी शामिल थे, क्योंकि घटना में इनके प्रथम दृष्टया संलिप्तता पाई गई, जो 13.01.2002 को घटित हुई थी। जब अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया जाता है, उसके बाद जांच एजेंसी की भूमिका समाप्त हो जाती है। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद जांच एजेंसी को यह अधिकार, शक्ति या क्षेत्राधिकार नहीं है कि वह कह सके कि कुछ अभियुक्तों को छोड़ दिया जाए या उनके विरुद्ध अभियोजन न चलाया जाए। ऐसा कार्य उनके अधिकार-क्षेत्र में नहीं आता है और आरोप पत्र दाखिल करने के बाद जांच एजेंसी को अपने रुख पर कायम रहना चाहिए।



39. यद्यपि राज्य को यह विवेकाधिकार है कि वह किसी भी आरोपी के विरुद्ध अभियोजन चलाए या नहीं, लेकिन किसी आरोपी के विरुद्ध अभियोजन वापस लेने के लिए कोई पर्याप्त कारण होना चाहिए। यहाँ, इस मामले में, राज्य द्वारा की गई ऐसी प्रार्थना न केवल ट्रायल कोर्ट द्वारा बल्कि इस न्यायालय और यहां तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने आदेश दिनांक 21.11.2003 द्वारा अस्वीकार कर दी है। अतः, इन परिस्थितियों में, लोक अभियोजक से अपेक्षा की जाती है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 225 और 226 में निहित प्रावधानों के अनुसार विधि के अनुसार कार्य करेगा।

40. यहाँ यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध आरोप तय करने के आदेश के विरुद्ध राज्य या लोक अभियोजक ने इस न्यायालय के समक्ष कोई ऐसी याचिका दाखिल नहीं की है कि उनके विरुद्ध आरोप गलत तरीके से तय किए गए हैं और उन्हें आरोपमुक्त किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि राज्य आरोप तय करने के आदेश से संतुष्ट है।

41. इस न्यायालय को याचिकाकर्ताओं के वकील की इस दलील में कोई बल नहीं लगता कि यदि अभियुक्तों के दोनों समूहों पर एक साथ मुकदमा चलाया जाता है, जिनके खिलाफ तीन अलग-अलग आरोपपत्र प्रस्तुत किए गए हैं, तो न्यायालय का ऐसा कृत्य आरोपों को गलत तरीके से जोड़ने के बराबर होगा। “आरोपों को गलत तरीके से जोड़ने” का सिद्धांत और सिद्धांत इस मामले में आरोप तय करने के चरण में लागू नहीं होता है।

अभियुक्तों के किस समूह ने दुर्भाग्यपूर्ण दिन हत्या के साथ डकैती की घटना को अंजाम दिया, यह मुकदमे के उपयुक्त चरण में देखा जाएगा, यानी अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष दोनों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की सराहना करने के बाद अंतिम चरण में। उस स्तर पर, ट्रायल कोर्ट को घटना की सही उत्पत्ति का पता लगाने के लिए अनाज से भूसा अलग करना होगा। हालांकि यह एक बहुत बड़ा काम होगा लेकिन ट्रायल कोर्ट का कर्तव्य है कि वह मुकदमे के समापन के अंतिम चरण में अनाज को भूसे से अलग करे और मुकदमे के अंतिम चरण में सावधानीपूर्वक जांच के बाद सबूतों की सराहना करे। आरोप निर्धारण के इस चरण में केवल प्रथम दृष्टया मामला ही देखा जाना आवश्यक है और वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही हेतु प्रथम दृष्टया साक्ष्य मौजूद हैं, इसलिए उन्हें दोषमुक्त करने का कोई मामला नहीं बनता। **लकोज़ ज़कारिया (सुप्रा)** मामले में याचिकाकर्ताओं द्वारा लिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता।

42. अब, यह न्यायालय शिव सिंह, सॉडे @ सोरेन सिंह और कैकैया @ रामखिलाड़ी की आरोपमुक्ति के मुद्दे पर निर्णय देता है। ट्रायल कोर्ट ने अनावश्यक रूप से उनके पक्ष में साक्ष्यों का विस्तार से परीक्षण किया, जैसे कि विद्वान ट्रायल जज उनके विरुद्ध अंतिम सुनवाई कर रहे थे। उनके विरुद्ध कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया साक्ष्य मौजूद था। सभी अभियुक्तों के स्थान पर ही अपराध में उपयोग किए गए हथियार बरामद हुए थे और अभियुक्त शिव सिंह को गवाह प्यारेलाल ने टेस्ट आइडेंटिफिकेशन परेड में पहचान लिया था। अतः, उनके विरुद्ध आरोपपत्र के आधार पर सभी अभियुक्तों के विरुद्ध कार्यवाही करने

के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद था। इसलिए, विद्वान ट्रायल जज ने दिनांक 30.07.2005 के आदेश द्वारा आरोपमुक्त करने में त्रुटि की है, क्योंकि उनके सामने आरोपमुक्त करने के लिए कोई उचित आधार मौजूद नहीं था।

43. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आरोपी शिव सिंह, सॉडे @ सोरेन सिंह तथा कैकैया @ रामखिलाड़ी को आरोपमुक्त कर अपने अधिकार क्षेत्र से परे शक्ति का अत्यधिक प्रयोग किया है। अतः, दिनांक 30.07.2005 का आरोपमुक्ति आदेश विधि की दृष्टि में टिकाऊ नहीं है और उसे निरस्त व समाप्त किया जाना उचित है, साथ ही ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया जाता है कि वह कानून के अनुसार इन आरोपियों के विरुद्ध आगे कार्यवाही करे।

#### **निष्कर्ष :-**

44. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, याचिकाकर्ता आरोपियों द्वारा दायर एस.बी. आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 793/2005 अस्वीकार की जाती है तथा राज्य द्वारा आरोपियों की आरोपमुक्ति के विरुद्ध दायर एस.बी. आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 926/2005 स्वीकार की जाती है। ट्रायल कोर्ट को निर्देशित किया जाता है कि आरोपमुक्त आरोपियों के संबंध में कानून के अनुसार, उचित अवसर प्रदान करते हुए, नया आदेश पारित करे।

#### **निर्देश:-**

45. इस आदेश के साथ ही यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा वर्तमान पुनरीक्षण याचिकाओं का निर्णय करते समय जो भी टिप्पणियाँ की गई हैं, वे केवल आरोप तय करने के बिंदु पर वर्तमान पुनरीक्षण याचिकाओं के निपटारे तक ही सीमित

हैं। ट्रायल कोर्ट को निर्देशित किया जाता है कि वह मुकदमे का संचालन विधि के अनुरूप, दोनों पक्षों के साक्ष्यों की सराहना करते हुए, इस न्यायालय की किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना करे। 2002 से ट्रायल कोर्ट के समक्ष इस मामले की लंबितता को देखते हुए, अपेक्षा की जाती है कि ट्रायल कोर्ट, धारा 309 सीआरपीसी के अधीन निर्धारित निर्देश के अनुसार, मुकदमे की कार्यवाही शीघ्रता से पूरी करे और दोनों पक्षों द्वारा स्थगन के किसी भी अनावश्यक निवेदन पर विचार न करे।

46. इस न्यायालय को यह देखकर दुख होता है कि जाँच एजेंसी का आचरण कैसा है, क्योंकि एक ऐसी घटना के लिए भी, जो वर्ष 2002 में घटी थी, जाँच को सह-आरोपियों के विरुद्ध धारा 173(8) सी.आर.पी.सी. के तहत अभी भी लंबित रखा गया है। यह अपेक्षित नहीं है कि जाँच एजेंसी किसी जाँच को दो दशकों से अधिक समय तक लंबित रखे। पहले ही 22 वर्ष से अधिक बीत चुके हैं और अब भी जाँच धारा 173(8) सी.आर.पी.सी. के तहत लंबित है। राजस्थान पुलिस के महानिदेशक, जयपुर को निर्देशित किया जाता है कि वे इस मामले को देखें तथा जाँच को पूरा करने हेतु उचित आदेश पारित करें और जाँच तथा धारा 173 सी.आर.पी.सी. के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत करें, ताकि अब और विलंब न हो।

47. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक कार्यवाही तथा अनुपालन हेतु राजस्थान पुलिस, जयपुर के महानिदेशक को भेजी जाए।

(अनूप कुमार ढांड),जे

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"



**Tarun Mehra**

**Advocate**